



द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से, आत्मा की रुचि सम्बन्धित
पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी के
चयन किये गये वचनामृत

असल में तीव्र रुचि हो तो त्रिकालीदल में ही जम जाये; इधर-उधर की जँचे ही नहीं, (व्यवहार के विकल्प में रुके ही नहीं), योग्यतापर छोड़ देवे, वहाँ जोर (पुरुषार्थ) रहे ही नहीं; दृष्टि के विषय में ही जोर रहे। (इधर-उधर का विकल्प रहा करता है, वह स्वरूप की अरुचि के परिणाम का द्योतक है। स्वरूप की तीव्र रुचि में अन्य विकल्प नहीं रुचते।) ४१०.

(चर्चा सुननेवालों के प्रति) सभी की लगनी तो अच्छी है; लेकिन यथार्थ लगनी लगे तो हर समय यही (स्वरूपघूँटण) चलता रहे (-इसमें) कितना समय चला जाये मालूम ही न पड़े। रुचि का स्वरूप ही ऐसा है कि-जहाँ लगे वहाँ काल (समय) दिखे ही नहीं। ४१८.

रुचि तो उसको कहते हैं कि जिस विषय की रुचि होवे उसके बिना एक क्षण भी नहीं चल सके। पतंगा दीपक को देखते ही चोंट (झपट) जाता है, विचार नहीं करता। ऐसे ही, विचार.. विचार करते रहने से क्या? वस्तु को ही चोंट जावो। पूरी की पूरी वस्तु में व्याप्त होकर (उसे) ग्रस लो। ४४७.

रुचि अपने विषय में बाधक पदार्थों को फटा-फट हटा देती है, उनमें रुकती नहीं; (सीधे) अपने विषय को ही ग्रहण कर लेती है। ४५६

रुचि अपने कार्य में बाधा नहीं आने देती है, वह संयोग को और विकल्पों को नहीं गिनती। (स्वरूप की) रुचि हो तो हर समय यही का यही (स्वरूप का) चिंतन चलता रहे। ४९७.

रुचि हो तो प्रवृत्ति में भी अपने कार्य में विघ्न नहीं आता। दूसरे से तो कुछ लेना नहीं है, और (स्वयं) सुख का धाम है। उपयोगरहित चक्षु की माफिक (बाहर से) प्रवृत्ति में दिखाई तो दे, परंतु उपयोग (सावधानी) तो इधर (अंतर में) काम करता रहे। ४९८.

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४८: अंक-२९१, वर्ष-२४, मार्च-२०२२

आषाढ कृष्ण १३, शनिवार, दि. १६-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-८९, प्रवचन-३६

‘योगसार’, योगीन्द्रदेव के ८९ श्लोक में अन्तिम गाथा है। देवसेनाचार्य तत्त्वसार में कहते हैं। अधिकार क्या चलता है? देखो! सम्यग्दृष्टि जीव, परव्यवहार को छोड़कर अपने शुद्धस्वभाव का आश्रय लेकर उसमें लीन होता है, वही एक मोक्ष का मार्ग है। इस गाथा के सार में यह लिखा है। समझ में आया?
अप्प-सरूवहँ जो रमइ छंडिवि सहु ववहारू।
सो सम्माइट्टी हवइ लहु पावइ भवपारू॥
८९॥

इसके आधार में यह गाथा दी है, देखो!
लहइ ण भव्वो मोक्खं जावइ परदव्व बावडो
चित्तो।
उगतवंपि कुणंतो सुद्धे भावे लहुं
लहइ॥ ३५॥

एक शब्द में कितना भरा है, देखो! ‘जब तक चित्त परद्रव्य के व्यवहार में रहता है...’ भगवान आत्मा अपना स्वद्रव्य शुद्ध चैतन्यमूर्ति का आश्रय छोड़कर जब तक परद्रव्य का आश्रय करता है, तब तक उसे मुक्ति नहीं होती है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में भी पहले स्वद्रव्य का आश्रय होता है, बाद में भी जितना परद्रव्य के आश्रय से राग रहे, तब तक उसकी मुक्ति नहीं होती है।

मुमुक्षु : राग से संवर-निर्जरा होते हैं।

उत्तर : राग से संवर-निर्जरा, वह पण्डित कहता है, वह पण्डित (संवत्) २०१३ के साल में कहता था। व्यवहार बन्ध का कारण है, लाओ सिद्ध कर दूँ। कौन माने?

मुमुक्षु : ...

उत्तर : यह सब कुछ ठिकाना नहीं होता। पण्डितजी! वहाँ २०१३ की साल में वहाँ कहा था, बाद में सुना था। हम आये वहाँ चर्चा में कहते थे, व्यवहाररत्नत्रय बन्ध का कारण है, लाओ, चर्चा करो परन्तु कोई करता नहीं, किसी को सुनना नहीं। व्यवहार पराश्रय है और निश्चय स्वाश्रय है, यह तो सीधी बात है, इस गाथा का यहाँ आधार लेकर कहते हैं।

जब तक आत्मा को पहली शुरुआत से स्वद्रव्य चैतन्य का आश्रय न हो, तब तक उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। परद्रव्य के आश्रय से - साक्षात् तीर्थंकर हो, सर्वज्ञ हो, समवसरण हो, सम्पेदशिखर हो, या गणधर-आचार्य आदि हो, उन परद्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन तीन काल में नहीं होता।

मुमुक्षु : दिव्यध्वनि से नहीं होता तो फिर....

उत्तर : क्या करे? भगवान! वह दिव्यध्वनि तो परद्रव्य है, आहा...हा...!

मुमुक्षु : अरे... साहिब! उत्तर हिन्दुस्तान में हो जाये।

उत्तर : हाँ! यह पण्डित उत्तर हिन्दुस्तान का नहीं? आहा...हा...! भगवान! न्याय से तो सुनो, भाई! कि यह आत्मद्रव्य है, वह एक सेकण्ड असंख्य भाग में शुद्धद्रव्य, गुण पर्याय का पिण्ड है... तो वह द्रव्य-गुण-पर्याय शुद्ध है। पुण्य-पाप का विकल्प तो आस्रव है; शरीर, कर्म आदि अजीव है; देव-गुरु-शास्त्र, सम्मोदशिखर या सर्वज्ञ साक्षात् समवसरण, वह परद्रव्य है। परद्रव्य के आश्रय से कभी धर्म की शुरुआत नहीं होती। कहो, समझ में आया? क्योंकि जो स्वद्रव्य है, उसमें अनन्त-अनन्त शुद्धता पड़ी है तो स्वद्रव्य का आश्रय लिये बिना पहले सम्यग्दर्शन की शुरुआत नहीं होती। समझ में आया?

यहाँ तो पूरी बात करते हैं कि जब तक परद्रव्य का आश्रय रहता है - रागादि, व्यवहारादि, विकल्पादि (रहेंगे), तब तक उसे मुक्ति नहीं होगी। समझ में आया? देखो! 'जब तक चित्त परद्रव्य के व्यवहार में रहता है (संलग्न है), तब तक भव्य जीव कठिन-कठिन तप करता हुआ भी...' 'उगगतवंपि कुणंतो' - ऐसा देवसेनाचार्य का पाठ है। मोक्ष प्राप्त नहीं करता है, पर की ओर के लक्ष्य से कठिन तप क्या, बारह-बारह महीने के उपवास करे, इन्द्रियदमन परलक्ष्य से करे, उसमें क्या हुआ, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। भगवान आत्मा एक सेकण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द स्वतत्त्व है, उस स्वतत्त्व के आश्रय से अनन्त काल में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति जिसे हुई, उसे उससे हुई है। समझ में आया? और बाद में भी जितना व्यवहार रहा उसे पराश्रय जानकर, स्व-आश्रय करके छोड़ता है, तो उसे केवलज्ञान अथवा शुक्लध्यान से मुक्ति होती है। स्वाश्रयोनिश्चय पराश्रयोव्यवहार - सीधी बात है। इसमें तो कुछ इतने

शास्त्र पढ़े तो समझ में आये - ऐसी कोई बात नहीं है। समझ में आया?

यहाँ देवसेनाचार्य तत्त्वसार में कहते हैं कि कठिन-कठिन 'उगगतवंपि कुणंतो' परन्तु 'परद्रव्य बावडो' लक्ष्य पर के ऊपर है, राग पर है, निमित्त पर है, संयोग पर है, देव-गुरु पर है, तब तक उसे सम्यग्दर्शन भी नहीं होता। आहा...हा...! समझ में आया? पहले श्रद्धा में ऐसा निर्णय न हो कि मैं तो स्वद्रव्य के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की प्राप्ति करता हूँ; पर के आश्रय से मुझे

बिल्कुल नहीं होता, क्योंकि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, आनन्द इन सभी पर्यायों का पिण्ड तो द्रव्य है। वह पर्याय कहीं राग में नहीं रहती, उस पर्याय की शक्ति राग में (नहीं रहती)। व्यवहार के राग में पर्याय की शक्ति रहती है? निमित्त में रहती है? यह पर्याय - निर्मल मोक्षमार्ग की पर्याय, इस पर्याय की शक्ति तो द्रव्य गुण में है। समझ में आया? यह शक्ति राग में है? व्यवहार विकल्प में है? संहनन में है? देह में है? यह शक्ति पर देह में है? समझ में आया? सीधी बात और सरल बात है परन्तु इतनी अधिक गड़बड़ कर डाली है। शास्त्र की स्वाध्याय, ऐसा कर्ता और ऐसा वाद और विवाद...

भाई! यहाँ तो कहते हैं कि 'लहइ ण भव्वो' भव्य जीव होने पर भी, उग्र तप करने पर भी, परद्रव्य के व्यवहार को न छोड़े... समझ में आया? बन्ध अधिकार में भी अमृतचन्द्राचार्यदेव ने कहा है (कलश १७३) 'अध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै' भगवान ऐसा कहते हैं कि मैं परद्रव्य को जीवित रखता हूँ, मारता हूँ, सुखी-दुःखी करता हूँ, परद्रव्य की पीड़ा, एकत्वबुद्धि, यह तो मिथ्यात्व है। इस मिथ्यात्व का, परद्रव्य का आश्रय जब भगवान ने छोड़ा तो आचार्य



कहते हैं कि हम इसमें से निकालते हैं कि जितना परद्रव्य के आश्रित व्यवहार है, उसे भगवान आचार्य छुड़ाते हैं। पण्डितजी! इस श्लोक में आया न, तुम्हें तो कण्ठस्थ है 'अध्यवसानमेवमखिलं'

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै-
स्तन्मन्येव्यवहार एव निखिलोऽप्य-
न्याश्रयस्त्याजितः।

सम्यङ्निश्चयमेकमेव तदमी निष्कम्पमाक्रम्य
किं शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बन्धन्ति
सन्तो धृतिम्। (समयसार कलश १७३)

महासिद्धान्त है। कहो, पाटनीजी! इसमें वाद-
विवाद का स्थान कहाँ है? भाई! भगवान आत्मा सर्वज्ञ
परमेश्वर ने ऐसा कहा कि परद्रव्य को जीवित रखना-
मारना, सुखी-दुःखी करना, तलवार हाथ में लेना, शरीर
की क्रिया - यह सब आत्मा नहीं कर सकता और मैं
कर सकता हूँ - ऐसा मानना, अध्यवसान अर्थात् दो
द्रव्यों की एकताबुद्धि का मिथ्यात्व है। अतः भगवान
ने जब दो द्रव्यों की एकताबुद्धि का पृथक् द्रव्य कराने
को मिथ्यात्व छुड़ाया, परद्रव्य का अध्यवसान छुड़ाया
तो आचार्य कहते हैं कि यह तो एकताबुद्धि छुड़ायी है
परन्तु हम तो इसमें से निकालते हैं कि परद्रव्य के
आश्रित जितने भाव-व्यवहार हैं, उन सबको भगवान
छुड़ाते हैं। आहा...हा...! निश्चयनयाश्रित... देखो!
ऐसी बात निकालते हैं... यह व्यवहार जो है, वह
मिथ्यादृष्टि का व्यवहार है। अरे... भाई! अन्यआश्रयत्वात्
जो व्यवहार अन्य के आश्रय से उत्पन्न होता है, वह
सम्यग्दृष्टि को भी त्याज्य है, मिथ्यादृष्टि को तो व्यवहार
की बात ही कहाँ है? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, सर्वज्ञ परमेश्वर ने जब अपने
आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य के कर्तापने का अभिमान-
मिथ्यात्व छुड़ाया तो हम तो ऐसा जानते हैं कि परद्रव्य
के आश्रित जो अपने में व्यवहार हुआ.... वह तो
परद्रव्य का कार्य छुड़ाया, कार्य कर नहीं सकता इसलिए...
परन्तु उसमें से हम तो ऐसा निकालते हैं कि परद्रव्य के
आश्रय से जो भाव होता है, उस व्यवहार को भी

भगवान ने छुड़ाया है। आहा...हा...!
'अन्यआश्रयत्वात्' यह बात यहाँ कहते हैं।

भाई! आत्मा वस्तु है, महान चैतन्य ज्योत है,
उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, उसके आश्रय से
सम्यग्ज्ञान होता है, उसके आश्रय से उग्र पुरुषार्थ से
सम्यक्चारित्र होता है, उसके आश्रय से शुक्लध्यान
होता है, उसके आश्रय से केवलज्ञान होता है। समझ में
आया?

मुमुक्षु : आपने तो बात खोल डाली।

उत्तर : गुप्त रखने के लिए होगी? यह गुप्त बात
आचार्यों ने तो ढिंढोरा पीट कर कही है। अमृतचन्द्राचार्यदेव
ने तो खुल्लम-खुल्ला कर दिया है, और कुन्दकुन्दाचार्यदेव
ने तो पहले खुला कर डाला। 'व्यवहारोपरिसिद्धो' -
क्योंकि व्यवहार पराश्रय है, निश्चय स्व आश्रय है।
निश्चय नयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाण की - यह
बात यहाँ है। समझ में आया? अरे...!

मुमुक्षु : लोग व्यवहार को मानते हैं?

उत्तर : लोग चाहे जो हो तो क्या है? व्यवहार
पराश्रय है, वह बन्ध का कारण है, यह सिद्धान्त
निश्चित है - तीन काल-तीन लोक में... समझ में
आया? सर्वज्ञ की पेढी में यह चलता है, दूसरी पेढी में
नहीं चलता। ऐसा व्यापार भगवान के घर का है।
आहा...हा...!

यहाँ देवसेनाचार्य कहते हैं 'जब तक चित्त
परद्रव्य...' के प्रति लक्ष्य जाता है, विकल्प, सर्वज्ञ
परमात्मा है, यह देव है, यह गुरु है (-ऐसा लक्ष्य जाता
है), तब तक उसे बन्ध का कारण है, उसके आश्रय से
मुक्ति नहीं होगी। तब तक स्व आश्रय नहीं होता। तब
पाठ कैसा लिया है? देखो भाई! 'सुद्धे भावे लहुं
लहइ' इतना पाठ। अर्थात् यह क्या (कहा)? परद्रव्य
के आश्रय से जो भाव होता है, वह अशुद्ध है; परद्रव्य
के प्रति लक्ष्य जाता है, चाहे जितना दया-दान-भक्ति,
व्रत-तपादि, उसके अशुद्धभाव हैं, फिर शुभ हो तो भी
अशुद्ध है।

स्वद्रव्य के आश्रय से 'सुद्धे भावे लहुं लहइ'-

ऐसा शब्द रखा है। शुद्धभाव अपना आत्मा शुद्ध चैतन्यद्रव्य है, उसके आश्रय से शुद्धभाव उत्पन्न होता है, उस शुद्धभाव से अपना निर्वाण अर्थात् मुक्ति होती है। पहले ही शुद्धभाव से सम्यग्दर्शन, शुद्धभाव से सम्यग्ज्ञान अपने आश्रय से सम्यग्दर्शन, अपने आश्रय से ज्ञान, यह भाव - सम्यग्दर्शन शुद्धभाव है। शुद्धभाव त्रिकाल के आश्रय से उत्पन्न हुई पर्याय, वह शुद्धभाव है। शुद्धभाव त्रिकाल के आश्रय से सम्यक्ज्ञान उत्पन्न हुआ, वह शुद्धभाव है। शुद्धभाव त्रिकाल के आश्रय से स्थिरता-चारित्र्य हुआ, वह शुद्धभाव है; उस शुद्धभाव से मुक्ति होती है। समझ में आया? आहा...हा...! इसमें चर्चा और वाद-विवाद का अवसर भी कहाँ है?

कहते हैं, पण्डितजी का पढ़ाया हुआ शिष्य कहता है, दो मिनट की बात है। सुना है? यह सागरवाले नहीं? मुन्नालालजी, वे लिखते हैं कि यह उपादान, निमित्त, निश्चय, व्यवहार और क्रमबद्ध की दो मिनट की बात है। इतनी माथापच्ची क्या करते हो? उपादान से होता है, स्वयं से; निमित्त है; निश्चय होता है तो व्यवहार है, बस! सीधी बात है और द्रव्य की व्यवस्थित पर्याय है, वह क्रमबद्ध... दो मिनट की बात में इतनी क्या चर्चा? पाटनी ने बड़ा लम्बा किया जयपुर में, कितने हजार खर्च करेंगे? दस-दस हजार ऐसा कहते हैं। उसमें लिखा है, तुम्हारा नाम नहीं लिखा। यह लोग इतने सब पैसे खर्च कर सकते हैं और इतना करते हैं। दो मिनट का काम है। शान्ति से दो पण्डित मिल जायें तो यह बड़े पण्डित हैं, उनके साथ बिठाना चाहिए। यह कहे कि हमें कुछ करना नहीं है परन्तु क्या करे? कौन माने?

भाई! ऐसा अवसर मिला। जैनदर्शन का मूल तत्त्व है, उससे विपरीत होवे तो शासन की पद्धति बदल जाएगी। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ ने जो पन्थ कहा, उसकी पद्धति न रहे तो पूरी अन्यमती जैसी पद्धति हो जाएगी। राग से लाभ है, पर से लाभ है, यह तो अन्यमत की पद्धति है, जैनदर्शन की यह है ही नहीं।

भाई! जैनदर्शन की पद्धति सर्वज्ञ की परम्परा से अनादि से चली है, वैसी आनी चाहिए। विशेष स्थिरता भले अन्दर न हो परन्तु दृष्टि तो अपने स्वरूप के आश्रय से लाभ है, यह बात तीन काल में दूसरी नहीं होनी चाहिए। समझ में आया? ज्ञानचन्दजी! आहा...हा...!

देखो, पाठ ऐसा है, 'सुद्धे भावे लहुं लहइ' यह 'सुद्धे भावे' वर्तमान पर्याय की बात है, हाँ! त्रिकाल की नहीं। त्रिकाल तो शुद्ध है ही परन्तु त्रिकाल का आश्रय करना, वह शुद्धभाव है, और पर का आश्रय करना, वह अशुद्धभाव है। इस प्रकार देवसेनाचार्य ने संक्षिप्त शब्द ले लिये हैं। समझ में आया? 'शुद्ध आत्मिकभावों का लाभ होने पर...' देखो! 'वह शीघ्र ही मोक्ष को पा लेता है।' आहा...हा...! समझ में आया?

मुमुक्षु : पर का आश्रय तो पहले करे न?

उत्तर : पर का आश्रय पहले करे। पश्चिम में जाये तब पूर्व को चले, ऐसा होगा? उगमणो (पूर्व) समझते हो? पहले पश्चिम में थोड़ा चले फिर पूर्व में चले, इसका अर्थ क्या? देवानुप्रिया! ये सेठ है, दलाल। और है भी सेठ, हाँ! इसके परिवार में सेठ कहलाते हैं, सेठिया, सेठ, सेठ। कहो, समझ में आया?

यहाँ तो श्रेष्ठ-स्व आश्रय करना, वह श्रेष्ठ है। आहा...हा...! यह तो सेठ अर्थात् प्रभु! महान श्रेष्ठ स्वद्रव्यस्वभाव, उसके आश्रय से ही श्रेष्ठ सम्यग्दर्शन, ज्ञान की प्राप्ति होती है; अतः धर्मात्मा का चित्त जब तक परद्रव्य पर रहा, अरे...! क्षायिक सम्यक्त्व हुआ, स्व आश्रय से चारित्र्य भी हुआ परन्तु जब तक पर के आश्रय से राग रहता है, तब तक उसका अभाव किये बिना, स्व आश्रय किये बिना मुक्ति नहीं होती है। आहा...हा...! समझ में आया?

कहते हैं न, पराधीन सपने सुख नहीं... ऐसा नहीं कहते? भाषा तो करते हैं, पराधीन सपने सुख नहीं... इसका अर्थ क्या है? भगवान आत्मा अपना आश्रय छोड़कर साक्षात् सर्वज्ञ परमेश्वर का आश्रय करे तो भी

(प्रवचन का शेष अंश पृष्ठ सं.१४ पर)



पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार
ग्रंथके वचनामृत-२५५ पर भाववाही
प्रवचन, दि. २६-५-१९८३, प्रवचन
क्रमांक-११३ (विषय : मार्गदर्शन)

भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूपसे विराजमान है उसे अतीन्द्रिय ज्ञानसे जाना जाता है, पर वह इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जा सकता। ज्ञायक आत्मा लिंगों द्वारा अर्थात् इन्द्रियों द्वारा जाननेका कार्य नहीं करता। जो इन्द्रियों द्वारा जाननेका कार्य करे वह आत्मा नहीं है। इन्द्रियाँ अनात्मा है, इसलिये जो उनके द्वारा जाननेका कार्य करे-वह ज्ञान ही अनात्मा है। शास्त्र-श्रवण द्वारा जो ज्ञान होता है उस ज्ञानको आत्मा नहीं कहते हैं। शास्त्र-श्रवण करते हुए खयाल आता है कि 'ऐसा कहते हैं'—ऐसा जो ज्ञान होता है उसे इन्द्रिय द्वारा हुआ होनेसे आत्मा नहीं कहते। २५५.

(४५-४५ मिनट से)

२५५. 'शास्त्र-श्रवण द्वारा जो ज्ञान होता है उस ज्ञानको आत्मा नहीं कहते हैं।...' मिथ्यादृष्टि का या सम्यग्दृष्टि का। यहाँ तो न्याय एक समान किया जाता है। वह ज्ञान ही नहीं है। उसे ज्ञान नहीं कहना अथवा उसकी गिनती ज्ञान में नहीं करना। ऐसी बात है।

मुमुक्षु :- अज्ञान कहना?

पूज्य भाईश्री :- अज्ञान क्या, उसे जड़ कह दिया। फिर अनात्मा कहो या जड़ कहो। अणआत्मा कहो या उसे जड़ कहो। जो ज्ञान ज्ञान को आवरण करे उसे ज्ञान क्या कहना? उससे तो ज्ञानावरणीय बँधेगा। ज्ञान ज्ञायक का सेवन करे तो ज्ञानावरणीय का बन्ध है वह नाश हो जायेगा। अन्दर से ज्ञानशक्ति पनपे, अनन्त ज्ञानशक्ति विकसीत हो। अनन्त ज्ञान की, ज्ञ-पना की अनन्त शक्ति है वह विकसीत हो। यदि वह अंतर्मुख होकर ज्ञायक का सेवन करे तो। वह अंतर्मुखता छोड़कर जितनी ज्ञान

की पर्याय बाहर जाये उतना वह जड़ का सेवन करता है, बहिर्तत्त्व का सेवन करता है। अनात्म तत्त्व का सेवन करता है। वहाँ उसे ज्ञानावरणीय का बन्ध होता है। ज्ञान आवरित होता है, उसका ज्ञान आवरित हो जायेगा। उसे ज्ञान क्या कहे? जो ज्ञान स्वयं को ही आवरित करे उसे ज्ञान क्या कहें? जो व्यापार स्वयं को नुकसान करे उसे व्यापार क्या कहना? उसे कहीं व्यापार नहीं कहते।

'शास्त्र-श्रवण करते हुए खयाल आता है कि 'ऐसा कहते हैं'—ऐसा जो ज्ञान होता है उसे इन्द्रिय द्वारा हुआ होनेसे आत्मा नहीं कहते।' अब इस खयाल पर वजन कितना करना? खयाल पर वजन कितना देना? बहुत सूक्ष्म बातें कही है। अनुभव को ग्रहण करवाया है कि देख भाई! अभी जो तू सुन रहा है शास्त्र श्रवण में, शास्त्रस्वाध्याय करने में, यहाँ तो चालू उदयमान विषय को प्रयोग में लिया है। कहने में सूक्ष्मता क्या है? कि जो चालू उदयमान है कि यह

सुनते-सुनते तुझे ख्याल में आता है कि ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं ऐसा जो तुझे ख्याल में आता है, ऐसा जो ख्याल में आते वक्त जो जानना होता है वह मन द्वारा, इन्द्रियज्ञान द्वारा जानना, इन्द्रिय द्वारा जानना होता होने से उसे यहाँ आत्मा नहीं कहते हैं। अब मुझे बराबर ख्याल में आया है, मेरा ख्याल सच्चा है, मेरा सच्चा और आप का गलत। कहते हैं कि भाई! लेकिन उसे तो यहाँ आत्मा ही नहीं कहा है। उसे आत्मा नहीं कहते। ऐसा है।

अतीन्द्रिय ज्ञान का लक्षण भी अतीन्द्रिय है। जो ज्ञानलक्षण से लक्षित आत्मा होता है वह अतीन्द्रिय है, तो लक्षण और लक्ष्य एकसमान होने से, सदृश्यभावरूप होने से लक्षण भी अतीन्द्रिय है। जो ज्ञानसामान्य है वह अतीन्द्रिय ज्ञान है। यहाँ इन्द्रियज्ञान (कहा), इन्द्रियज्ञान नहीं उसे अतीन्द्रियज्ञान कहते हैं। वह सामान्य है। जो ज्ञान इस ओर (बाहर की ओर) जाता है वह तो इन्द्रियज्ञान है। लेकिन उसमें जो सामान्य रह गया वह अतीन्द्रिय ज्ञान है। उसे कोई इन्द्रिय के साथ सम्बन्ध नहीं है। उसे मन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, इन्द्रिय के साथ सम्बन्ध नहीं है। ऐसा जो ज्ञान का सामान्य स्वरूप है वहाँ से आत्मा ग्रहण होता है। परन्तु सब ख्याल में आता है तब तक ऐसा कहते हैं कि मन में ख्याल आता है। ऐसा सब समझने में, सुनने में जो ख्याल आता है वह सब मन से ख्याल में आता है और जाना है मन से पार। मनातीत होना है। जो ज्ञान मन में आता है, मनगोचर जो ज्ञान होता है उस हद से आगे जाना है। उसको ज्ञान कहते हैं। उस हद का उल्लंघन करके आगे बढ़े वह ज्ञान है। वहाँ तक का जो ज्ञान है वह ज्ञान नहीं है। ऐसा ले लेना है। ऐसा यदि वह समझे तो उसमें अटके नहीं। अन्यथा उसमें अटके बिना रहे नहीं। परन्तु ऐसा जब तक मन से समझना.. समझना.. समझना होता है तब तक उसे ज्ञान नहीं कहते हैं। अतः ऐसा समझना होता है वह मन में होता है वहाँ भी अभी उसे ज्ञान के तौर पर समझनेवाला स्वीकार नहीं करता। ऐसा लेना है। उसका अल्प भी वजन उसके ख्याल पर

न रहे। ऐसा ख्याल में आता है, ऐसा ख्याल में आता है, समझ में ऐसा ख्याल में आता है, ऐसा ख्याल आता है उस पर अल्प भी वजन नहीं जाता।

यहाँ बहुत सुन्दर विषय क्या है इसमें? कि पहले ख्याल नहीं पड़ता था और बाद में जब यह बात समझ में, ख्याल आने लगा तब ऐसा कहते हैं कि पहले नहीं बैठता था, अब बैठता है, अब समझ में आता है, अब ख्याल में आता है, अब बैठता है। उसको ऐसा कहते हैं कि ऐसे तो तुम कहाँ अटक गये? उसे तो यहाँ अनात्मा कहने में आया है। ठीक! कुछ समझ में आया ऐसा संतोष न होवे इसलिये उसको सीधी चोट मारे ऐसी यह बात है कि भाई! ख्याल में आया.. ख्याल में आया.. बैठ गया, बराबर समझ में आ गया। उसको तो यहाँ अभी अनात्मा कहते हैं। वह आत्मा नहीं, वह ज्ञान नहीं।

ज्ञान कोई दूसरी चीज है ऐसा यहाँ कहना चाहते हैं। अतीन्द्रिय ज्ञान का स्वरूप कहने में यह नहीं.. यह नहीं.. यह नहीं.. यह नहीं ऐसा कहते जाते हैं। शास्त्र द्वारा जो आत्मा कहने में आता है, सत्शास्त्र आत्मा को दर्शानेवाले हैं, सत्पुरुष भी आत्मा को दर्शानेवाले हैं। उसको सुनकर आत्मा को ख्याल में लेता है। तो कहते हैं कि नहीं, वह ख्यालवाला ज्ञान है सो ज्ञान नहीं है और वह आत्मा नहीं है। ऐसा लेना है। कहीं भी वह कल्पना में न आ जाये ऐसी बात ली है। इसलिये ज्ञानलक्षण लिया है कि जो अतीन्द्रिय ज्ञानलक्षण है, सामान्य ज्ञानलक्षण है वह प्रत्यक्ष है, प्रगट है, स्वानुभवगोचर है, वेदनगोचर है, प्रकाशस्वरूप है। वेदनगोचर है यानी प्रकाशस्वरूप है। वह आत्मा, वहाँ से ऐसा आत्मा, इस प्रकार वहाँ अंतर्मुख हुआ जाता है इसलिये वहाँ से ज्ञान प्रगट होता है ऐसा कहने में आता है। वहाँ ज्ञान प्रगट हुआ।

जैसा अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा ज्ञान में आया अर्थात् अतीन्द्रिय भाव भासित हुआ, अतीन्द्रिय लक्षण द्वारा अतीन्द्रिय भाव लक्षित हुआ तब उसे अभी तो ज्ञान में प्रवेश करने के लिये एक मर्यादा उत्पन्न हुई।

अनुभव हुआ तब ज्ञान हुआ। इसलिये उसे मर्यादित हुआ ऐसा कहते हैं। मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान से जब ज्ञानस्वभावी आत्मा का निश्चय होता है तब मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान मर्यादा में आते हैं और ये मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान एकदम आगे बढ़कर अतीन्द्रिय आत्मा का अंतर अवलंबन लेता है तब उसे निर्विकल्प अतीन्द्रिय ज्ञान की दशा प्रगट होती है। तब उसे ज्ञान हुआ ऐसा कहने में आता है। पहली बार ज्ञान हुआ ऐसा कहने में आता है। तब तक ज्ञान नहीं हुआ है।

वह तो श्रीमद्जी ने लिया है न, 'होय पूर्व नव भणेल पण जो जीवने जाण्यो नहि'. जीव यानी यह अतीन्द्रियस्वरूपी आत्मा उसको जाना नहीं, निर्विकल्प अतीन्द्रिय आत्मा प्रत्यक्ष स्वरूपी, सहज प्रत्यक्ष है उसकी प्रत्यक्षता उसे भास्यमान होती है तब उसे आत्मा का ज्ञान हुआ ऐसा कहने में आता है। बाकी तो सब शास्त्र एवं नव पूर्व पढ़ा हो तो भी ऐसे जीव को जाना नहीं तब तक उसे ज्ञान नहीं हुआ।

मुमुक्षु :- भास्यमान यानी अनुभव होना?

पूज्य भाईश्री :- भास्यमान यानी वहाँ अभी ख्याल है, परन्तु वहाँ प्रत्यक्षता का ख्याल है। अर्थात् वहाँ जाति में थोड़ा फर्क पड़ता है। वहाँ से सन्मुखता होती है न। ज्ञान सन्मुख होता है। परन्तु अभी ज्ञान हुआ नहीं है। वह तो अतीन्द्रिय अनुभव हो तब उसे ज्ञान हुआ ऐसा कहने में आये। परन्तु सन्मुख होता है इतना फर्क पड़ता है। पहले में उसका वह फर्क बता दिया। बाकी अनुभवज्ञान है सो ज्ञान है और बाकी का ज्ञान वह कोई ज्ञान नहीं है, ऐसा लेना है।

मेंढक-चीड़िया को ऐसा ज्ञान हो और अंग-पूर्वधारी को न भी हो। उसका अर्थ क्या हुआ? जो कुछ करने योग्य है वह किया जाये तो होता है। अन्यथा श्रीमद्जी ने कहा कि 'मात्र मननो आमळो। जिनवर कहे छे ज्ञान तेने सर्व भव्यो सांभळो।' उसे राग हुआ कि मैं शास्त्र पढ़ लूँ, मैं शास्त्र सुन लूँ। वह उसने मन का भाव पूरा किया, और कुछ नहीं। लोग कहते हैं न, यह काम किये बिना उसे चैन नहीं होगा। एक धुन लगी है। वैसे ही अज्ञानी जीव क्या करता है? पुनः पुनः सुनना, पुनः पुनः पढ़ना, मानता है कि ज्ञान हुआ। भाई! वह मन का भाव है। ज्ञान कोई अलग चीज है।

ऐसा अतीन्द्रिय ज्ञान पर उसका वज़न हो तो इन्द्रियज्ञान में वह अटके नहीं वरना अटके बिना रहे नहीं ऐसी परिस्थिति है। क्योंकि उघाड़ है वह भी एक ऐसी चीज है कि लोगों को खिँचाव होता है। अरे.. वाह! इतना सब जानता है! इतना सब समझता है! लोगों को आकर्षण होता है न! लेकिन भाई! वह अनात्मा का आकर्षण है, वह जड़ का आकर्षण है, वह इन्द्रिय के विषय का आकर्षण है। ऐसा उसे अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूपी आत्मा पर उसका आकर्षण एवं झुकाव होना चाहिये। तो कहीं अटकेगा नहीं और उसके स्वरूप की अंतर खोज में गहरे.. गहरे.. गहरे अतीन्द्रिय स्वरूप की खोज में चला जाये। अन्यथा कहीं न कहीं वह अटक जाता है। या तो स्वयं के उघाड़ में अथवा अन्य किसी के उघाड़ में। ऐसी उसकी उघाड़ की महिमा उसे आत्मा पर्यंत पहुँचने नहीं देती, परिभ्रमण कराती है। ऐसी यहाँ इस बोल में बहुत अच्छी बात करनी है।

परमागमसार बोल-२५६ पर हुआ भाववाही प्रवचन
दि. २९-५-१९८३, प्रवचन नं. ११४ (विषय : मार्गदर्शन)

आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञानमय है, इन्द्रिय-ज्ञानगम्य नहीं। इन्द्रियों द्वारा शास्त्र-वांचन और श्रवणसे हुआ ज्ञान अतीन्द्रिय-ज्ञान नहीं, आत्मज्ञान नहीं, वह तो खंडखंड ज्ञान है। ११ अंग और ९ पूर्वका ज्ञान परसत्तावलंबी-ज्ञान है, वह बन्धका कारण है। यहाँ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि प्रभु! एक बार सुन; आत्माको अतीन्द्रिय ज्ञानसे ही जानना होता है, इन्द्रिय ज्ञानसे जानना-सो आत्मा नहीं है। २५६.

... किसी भी कारण से। जो उघाडज्ञान है, बुद्धिरूप ज्ञान है उसकी महत्ता आती है तब उसका रस चढ़ा, उसकी महत्ता आयी, उसकी महिमा आयी, उसकी मुख्यता आयी, यह प्रकार होता है। वह इन्द्रियज्ञान ज्ञान ही नहीं है। तेरा, आगम अनुसार सच्चा हो तो भी वह ज्ञान नहीं है। बोल, अब क्या कहना है? आगम से विपरीत हो तो तो ज्ञान है ही नहीं। समझवाला ज्ञान आगम विरुद्ध हो तो तो वह ज्ञान ही नहीं है। उसमें तो चर्चा करने का सवाल ही नहीं है। ... हो तो भी वह ज्ञान नहीं ऐसा यहाँ स्पष्ट कहते हैं।

वह अतीन्द्रिय ज्ञान नहीं है। वह 'वह अतीन्द्रिय-ज्ञान नहीं,...' अर्थात् 'आत्मज्ञान नहीं,...' जो ज्ञान-आत्मज्ञान भवभ्रमण का छेदक है, भवभ्रमण के नाश का कारण है वह आत्मज्ञान। शास्त्र का जानपना, सुनना, पढ़ना, विचार किया वह ज्ञान नहीं है, ऐसा कहना है। वैसे तो सोनगढ़वालों की ऐसी छाप है कि ये सब शास्त्र पढ़-पढ़कर सब ज्ञानी.. ज्ञानी.. ज्ञानी है। बाहरवाले ऐसा समझते हैं कि ये सब ज्ञानी हैं। परन्तु यहाँ सोनगढ़ में ऐसा कहते हैं कि वह ज्ञान नहीं। पढ़-पढ़कर, सुन-सुनकर नक्की किया वह ज्ञान नहीं, ज्ञान कोई अलग चीज है।

'वह अतीन्द्रिय ज्ञान नहीं, वह आत्मज्ञान

नहीं, वह तो खंडखंड ज्ञान है।' गुरुदेवश्रीने ये विषय बहुत स्पष्ट किया है। कहते हैं कि वह इन्द्रिय द्वारा खंड खंड रूप से एक इन्द्रिय से दूसरी इन्द्रिय प्रति खंडित होकर जाता है, दूसरी इन्द्रिय से तीसरी इन्द्रिय के प्रति खंडित होकर जाता है, आत्मा जो अखंड ज्ञानस्वभावी है, अखंडस्वरूपी आत्मा है उसे ऐसा खंड खंडपना नहीं होता। खंड खंडपना उसका स्वरूप नहीं है ऐसा कहना है। वह तो उसके स्वरूप से विरुद्ध बात है, वह उसका स्वरूप नहीं है।

'वह तो खंडखंड ज्ञान है। ११ अंग और ९ पूर्व का ज्ञान...' वर्तमान में किसी को है नहीं, हाँ! इस काल में तो किसी को नहीं है। विच्छेद हो गया है। बहुभाग अंग पूर्व है उसका विच्छेद हो गया है। '११ अंग और ९ पूर्व का ज्ञान परसत्तावलंबी-ज्ञान है।' एक बार उसने ११ अंग और ९ पूर्व पर्यंत अभ्यास कर लिया हो तो वह सब, शास्त्र जो पुद्गलात्मक है उसकी हयाती यानी उसकी सत्ता का अवलंबन लेकर उत्पन्न हुआ ज्ञान है वह परसत्तावलंबी ज्ञान है और 'वह बन्धका कारण है।' वह ज्ञान बन्ध का कारण है। लो, ऐसा कहना है। वह ज्ञान मोक्ष का कारण नहीं है, परन्तु वह ज्ञान बन्ध का कारण है। ऐसा है।

राग तो स्पष्टतया बन्ध का कारण है परन्तु यहाँ परसत्तावलंबी ज्ञान बन्ध का कारण है। कैसी बात ली है! उससे ज्ञान को आवरण होगा ऐसा कहते हैं। ज्ञान खिलेगा नहीं, ज्ञानशक्ति खुलेगी नहीं परन्तु ज्ञान को उससे आवरण होगा, तुझे ज्ञानावरणीय बन्धेगा। शास्त्र पढ़ने से तो ज्ञानावरणीय का उघाड होता है। वह तो पूर्व कर्म का उदय है। जैसे पूर्व कर्म के उदय से बाह्य सामग्री पैसा, निर्धनता, श्रीमंताई इत्यादि होते हैं, वैसे यहाँ भी बुद्धि का उघाड लेकर आता है वह पूर्व कर्म का क्षयोपशम है। फिर कोई शास्त्र में चलाये और कोई अस्त्र-शास्त्र में चलाये और कोई शास्त्र में चलाये। परन्तु वह सब तो पूर्व कर्म का उघाड है।

अतीन्द्रिय ज्ञान है उसको उघाड के साथ ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है कि उसे उघाड में बहुत उघाड हो तो ही उसे आत्मज्ञान और अतीन्द्रिय ज्ञान हो और कम उघाड हो और कम समझ हो तो उसको नहीं होता है, ऐसा नियम नहीं है, ऐसा कोई नियम नहीं है। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव को प्रयोजनभूत विषय में अपनी प्रयोजन की सूझ होने से, सूझ रहती होने के कारण कम से कम उघाडवाले तिर्यच जीव भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म को प्राप्त कर सकता है। क्योंकि वह उसका प्रयोजन है। उसमें बहुत बुद्धि चाहिये और बहुत शास्त्र की समझ चाहिये ऐसा कुछ नहीं है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- वह ज्ञान खंड खंड ज्ञान है। खंड खंड यानी टुकड़े होना। खंड खंड ज्ञान यानी खंड होना यानी टुकड़ा होना। एक इन्द्रियज्ञान का व्यापार है। एक ही इन्द्रियज्ञान के विषय से चालू ही रहे ऐसा नहीं बनता। क्या होता है? कि कोई भी पर विषय में अंतर्मुहूर्त से अधिक उपयोग (टिकता नहीं)। (चाहे) जैसे इच्छित, चाहे जैसा इष्ट, चाहे जैसा रुचिकर विषय हो तो भी परविषय में अंतर्मुहूर्त से अधिक उपयोग कोई छद्मस्थ जीव का रह नहीं सकता। वह तुरंत ही दूसरी इन्द्रिय के विषय की ओर जाता है, तुरंत ही तीसरे इन्द्रिय विषय की ओर जायेगा। तब एक इन्द्रिय का

विषय छोड़कर, दूसरे इन्द्रिय के विषय पर ज्ञान जाता है तब वह उपयोग धारावाही नहीं रहता। विषय बदल जाता है इसलिये उपयोग धारावाही नहीं रहता, ज्ञान धारावाही नहीं रहता, खंडित होता है वह ज्ञान। यह तो एक इसका बाह्य पहलू है समझाने के लिये।

उसका आध्यात्मिक पहलू दूसरे प्रकार से है। आत्मा को जो दुःख होता है वह खंड खंड ज्ञान के कारण होता है। अखंड जो ज्ञान होता है उसमें सुख होता है और खंड ज्ञान में दुःख होता है। जैसे कोई टुकड़े करे तो उसमें उसको पुष्टि होती है? उसका छेद करे तो पुष्टि होती है? इस तरह यहाँ ज्ञान का छेद होता है। एक-एक भिन्न-भिन्न विषय में ज्ञान की प्रवृत्ति होने से ज्ञान में खंडितपना होता है, छेदन होता है, भेदन होता है ज्ञान का। ज्ञान भेदयुक्त होकर भेद होता है वह दुःख का उत्पादक ज्ञान है, वहाँ उसे दुःख उत्पन्न होता है। भले ही उसने सुख माना हो तो भी वहाँ उसे नियम से दुःख उत्पन्न हुआ है। ऐसा ज्ञानी ज्ञान में बराबर जानता है। अज्ञानी जानता हो या नहीं जानता हो, वह तो सुख की कल्पना करके राचता है। लेकिन उसको वहाँ दुःख होता है।

अखंड जो ज्ञानस्वभाव, अखंड जो स्वरूप है उसके आधार से, उसके अवलम्बन से जो ज्ञान की धारा चले, जो ज्ञान का उपयोग हो उसे अखंड ज्ञान कहने में आता है। क्योंकि अखंड स्वरूप के आकाररूप स्वरूपाकार हुआ है, स्वाकार हुआ ज्ञान वह अखंड ज्ञान है। वह जो धारा है, वीतरागी धारा मोक्षमार्ग की है, जिसे ज्ञानधारा कहते हैं, वह अखंडज्ञान है। उस धारा पर जो शुद्धोपयोग होता है वह भी अखंड ज्ञान है। क्योंकि ज्ञान वहाँ खंडित नहीं होता है। वहाँ अखंड के साथ स्वरूपाकारज्ञान, स्वरूप में लीन हुआ ज्ञान, स्वरूप में तन्मय हुआ ज्ञान वह स्वरूप सदृश्यभावरूप है। जैसा ज्ञानस्वभाव ज्ञान है ऐसा ही वह प्रगट ज्ञान है। सहज ज्ञान है ऐसा ही व्यक्त ज्ञान है। इसलिये वह ज्ञान है वह अखंड ज्ञान है। और इन्द्रियज्ञान है वह खंड खंड ज्ञान है।

वास्तव में तो खंडितता, अखंड और खंड दोनों सापेक्ष है। जिसे अखंडज्ञान प्रगट होता है उसे खंडज्ञान का ख्याल आता है। अतः ज्ञानी को जो अखंड ज्ञानधारा वर्तती है उनका उपयोग बाहर जाता है तब उसमें खंडितपना क्या होता है उसका उन्हें ज्ञान होता है। दोनों सापेक्ष हैं, अखंड और खंड। बाकी ऐसे ख्याल नहीं आता कि उसमें खंड-खंड क्या हुआ? क्योंकि उसको सब धारावाही लगता है। उपयोग यहाँ से यहाँ गया तो उसको सब धारावाही ही लगता है। स्थूल उपयोग है न। स्थूल ज्ञान है, (इसलिये) मालूम नहीं पड़ता। परन्तु वह खंड-खंड ज्ञान है। और वह खंडित हुआ ज्ञान है ऐसा आत्मा का स्वरूप नहीं है। इसलिये उस ज्ञान को आत्मा नहीं कहते हैं।

मुमुक्षु :- .. ज्ञान तो गौण किया, उसमें जानना-जानना होता है उसमें...

पूज्य भाईश्री :- वह जो सामान्य ज्ञान है वह खंड-खंड ज्ञान नहीं है। वह तो ज्ञानलक्षण है आत्मा का। जो जानना.. जानना.. जानना.. जानना.. सामान्यज्ञान है वह ज्ञान सामान्य है, वह खंडित नहीं है। ज्ञान विशेष होता है, उपयोग बाहर जाता है, इन्द्रिय द्वारा प्रवर्तता है वह खंडित ज्ञान है, वह खंड खंड ज्ञान है। ऐसा।

‘वह बन्धका कारण है।’ परसत्ता को साधता होने से, परपदार्थ को साधता होने से, राग को साधता होने से वह ज्ञान बन्ध का कारण है। स्वयं परपदार्थ में प्रतिबद्धता को प्राप्त होता हुआ, प्रतिबद्धता को प्राप्त वह ज्ञान, प्रतिबद्धपना कहो या बन्धपना कहो या भावबंध कहो, उसके निमित्त से होता हुआ द्रव्यबन्ध कहो, सब बन्धन में जाता है। बन्ध के दो प्रकार-एक द्रव्यबन्ध और एक भावबन्ध। आत्मा को जो भाव परद्रव्य में प्रतिबंध हो—प्रतिबद्ध हो वह भावबन्ध है और उसके निमित्त से जो द्रव्यकर्म का सम्बन्ध हो उसको द्रव्यबंध कहने में आता है। उसको सम्बन्ध इसलिये कहते हैं कि बहुत काल पर्यंत आत्मा के एकक्षेत्रावगाह पर्यंत रहता है इसलिये उसको अच्छा

बन्ध, सम्बन्ध, बहुत बन्ध, स-बन्ध यानी बहुत बन्ध कहा। हमारे बीच बहुत सम्बन्ध है, ऐसा कहते हैं न? वह बहुत बन्ध कहा। वह छूट जाता है। जो भावबन्ध है उसकी वह प्रतिक्षण कल्पना करता है। वह तो एक समय का बन्धभाव है, दूसरे समय वही बन्धभाव नहीं होता। नया बन्ध भाव उत्पन्न करे वह दूसरी बात है। न करे तो नहीं होता और करे तो होता है। इसलिये वह बन्ध का कारण है।

‘यहाँ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि प्रभु! एक बार सुन।’ देखिये! उसको भी प्रभु कहा है। परमात्मा ऐसा सुनाते हैं कि प्रभु! एक बार तू सुन। तेरा जो प्रभुत्व है, तेरी जो प्रभुता है उसको तू एक बार सुन। तू मानता है ऐसा तू पामर और निकम्मा नहीं है। ‘यहाँ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि प्रभु! एक बार सुन। आत्माको अतीन्द्रिय ज्ञानसे ही जानना होता है, इन्द्रिय ज्ञानसे जानना-सो आत्मा नहीं है।’ आत्मा को तो अतीन्द्रिय ज्ञान से जानना होता है। उसका जो स्वभावज्ञान है वह तो अतीन्द्रिय ज्ञान है, उससे वह जानता है। इन्द्रियज्ञान से जानना हो वह आत्मा नहीं, वह अनात्मा है। जड़ जैसा है उसको यहाँ अनात्मा कहने में आया है। ऐसा लिया है।

नीचपद में उच्चपद मानता है। जो इन्द्रियज्ञान को कीमत देता है, इन्द्रियज्ञान की जिसको महिमा है और उसकी महत्ता है, इन्द्रियज्ञान की जिसे मुख्यता है कि मेरी बुद्धि बहुत है। उघाड है न, वह बुद्धिरूप है कि मेरी बुद्धि बहुत है। उसको ऐसा कहते हैं कि तू तो अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर है, अतीन्द्रिय ज्ञान का समुद्र तू है। और एक अल्प बुद्धि के थोड़े विकास में तूने ऐसा मान लिया कि मैं तो बहुत आगे बढ़ गया। यह तो तूने नीचपद में उच्च पद मान लिया है। यह परिस्थिति है।

कहते हैं कि ‘इन्द्रियज्ञान से जानना- सो आत्मा नहीं है।’ उसको आत्मा के विभाग में नहीं ले जाना है। ऐसा। यहाँ से असंतोष उत्पन्न होना चाहिये। बहुत पढ़े, बहुत सुने, बहुत विचार करे फिर अतीन्द्रिय ज्ञान की उपलब्धि न हो तो उसे यहाँ से असंतोष होना

चाहिये कि ये कुछ नहीं किया है। निरावरणज्ञान प्रगट न हो, अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट न हो तो यह आवरणयुक्त ज्ञान, जिससे नया आवरण हो, बन्ध हो उस ज्ञान को ज्ञान क्या कहना? वह ज्ञान, वास्तविक ज्ञान नहीं है। और उसको ज्ञान गिनने में ज्ञान का अभिमान होगा, दूसरा कुछ नहीं होगा। वह असत् आग्रह है। इन्द्रियज्ञान के आग्रह को असत् आग्रह कहने में आता है। असत् यानी आत्मा में वह सत् नहीं है। सत्स्वरूप ऐसे आत्मा में उस इन्द्रियज्ञान की हयाती नहीं है इसलिए वह असत् है। असत् का आग्रह वह असत्य का आग्रह है। उसमें से दुर्गुण बढ़ने की परिस्थिति उत्पन्न होती है। गुण बढ़ने की परिस्थिति उसमें से नहीं है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- ज्ञानसामान्य पर जाना चाहिये। प्रयोग में ज्ञानसामान्य (पर जाना चाहिये)। जो ज्ञेयाकार ज्ञान है, विशेषज्ञान है उसमें कदापि मोहित नहीं होना। जो कोई जीव ज्ञेयाकार ज्ञान में लुब्ध है, १५वीं गाथा में यह शब्द है, विशेषज्ञान यानी ज्ञेयाकार ज्ञान में जो जीव लुब्ध है उसका अर्थ ही यह है कि वह इन्द्रिय के विषयों का लोलूपी है। ऐसा वहाँ लिया है। ऐसा शब्दप्रयोग वहाँ किया है। वह उसका दूसरा अर्थ है। अथवा इन्द्रिय विषय में लोलुपता कहाँ से उत्पन्न होती है? कि ज्ञेयाकाररूप जो विशेषज्ञान है उसमें आकर्षण और उसकी महत्ता रहने से। वहाँ से यह बात आगे बढ़कर, पनपकर इन्द्रिय विषय पर जाती है। इसलिये यहाँ से बंद करना है।

जो ज्ञान, ज्ञान का जो अन्दर का अंतरंग है, अन्दर का अंग है वह ज्ञानसामान्य है। ज्ञान का जो बहिरंग है वह ज्ञानविशेष है। इसीलिये तो भेदज्ञान में वह बात ली है। संवर अधिकार, १२६ कलश। पहली गाथा पर का जो कलश १२६वाँ लिया है उसमें यह बात ली है कि भेदज्ञान कैसे करना? यह प्रयोग कैसे करना ऐसा कहो या भेदज्ञान कैसे करना? कि अंतरंग सूक्ष्म अनुभवदृष्टिपूर्वक ज्ञान को भिन्न करना। ज्ञान को कैसे ग्रहण करके भिन्न करना? ज्ञान को ग्रहण करके

यानी स्वरूप को ग्रहण करके, कि अंतरंग सूक्ष्म अनुभवदृष्टिपूर्वक। इतने शब्द लिये हैं। अंतरंग शब्द क्यों लिया है? यह विचारणीय है। उसमें अंतरंग क्या है? कि विशेष जो ज्ञान है उसे तू पकड़ेगा तो जुदा नहीं होगा। क्योंकि ज्ञेयाकार ज्ञान तो ज्ञेयों के साथ जुड़ा हुआ है। विशेष जो ज्ञेयाकार ज्ञान है उसका सम्बन्ध तो परज्ञेयों के साथ है। और जो ज्ञानसामान्य है वह ज्ञान का अंतरंग है। ज्ञानविशेष है वह ज्ञान का बहिरंग है, बाह्य अंग है। और वही ज्ञान का ज्ञानसामान्य है वह ज्ञान का अंतरंग है। वह अंतरंग सूक्ष्म है। अंतरंग है वह सूक्ष्म है। जो ज्ञेयाकार ज्ञान है वह स्थूल है, पकड़ में आता है।

ऐसा जो सूक्ष्म अंतरंग है उसका अनुभवदृष्टिपूर्वक। उसके अनुभव में जाना है। जो जीव अपने ज्ञान में उत्पन्न होते हुए विशेष ज्ञेयाकारों को भी गौण करके सामान्यज्ञान को मुख्य करता है वह ज्ञान, ज्ञान के विषय को मुख्य करे इसका तो सवाल ही नहीं है। इसे पारमार्थिक उपेक्षा कहने में आता है। परमार्थ उपेक्षा क्या है? कोई ऐसा कहे कि भाई! क्या करें? यह आम का रस है वह खाने में अच्छा लगता है। भोजन करने बैठे तब ऐसा लगता है कि रोज दो-चार कटोरी तो जमकर पी लेना चाहिये। लेकिन भाई! कहते हैं कि तू उसकी उपेक्षा कब कर पायेगा? यह तो एक दृष्टान्त है। परन्तु कोई भी इन्द्रिय विषय की उपेक्षा तू कब कर पायेगा? कि जब तुझे तेरे अंतरंग ज्ञान की अपेक्षापूर्वक उसका आविर्भाव करने से उसकी अपेक्षा होगी तब विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान की भी उपेक्षा होगी। तो फिर विशेषज्ञान का विषय जो परपदार्थ है उसकी अपेक्षा होने का कोई प्रश्न नहीं रहता। इस तरह मूलमें से यदि मोह को काटने में आये तो, वह और किसी भी प्रकार से नष्ट हो ऐसी चीज नहीं है।

चिकना दर्द है। जैसे चीकना दर्द जल्दी मिटता नहीं। चिकना दर्द होता है न। बुखार उतर गया हो। आज आये तो कल उतर जाये। क्यों? उसको रखो और उसका उपचार करो। लेकिन जो चिकना दर्द होता है वह मिटता नहीं। इस प्रकार जो मोह है वह जीव के

बहुत ही चिकने परिणाम है। दर्शनमोह है वह जीव के चिकने परिणाम हैं। उसे मिटाने के लिये अंतर का अंतरंग प्रयोग है। भेदज्ञान है वह उसका अंतरंग प्रयोग है। और वह प्रयोग सावधानी से करे तब उसे... यह विषय अपने यहाँ चला आ रहा है। इसके बाद ही है। २५८ में है।

‘खयालमें आ सके इस प्रकार (प्रथम ही) राग और स्वभाव दोनों को छेदता है। बुद्धिगम्य छेदन याने कि, खयाल में आ सके इस प्रकार दोनोंमें भिन्नता करता है।’ २५८ में यह विषय है। १८१ कलश है, मोक्ष अधिकार का। समयसार में तो जगह-जगह भेदविज्ञान की बात है। कोई अधिकार बाकी नहीं है कि जिसमें भेदज्ञान का निरूपण नहीं हो। ऐसा एक भी अधिकार नहीं है। और कितनी ही गाथाओं में यह विषय लिया है।

कहते हैं कि ‘जो इन्द्रियों द्वारा जाननेका कार्य करे वह आत्मा नहीं है।’ शास्त्र का जानपना हो, शास्त्रज्ञान जिसे कहते हैं वह ज्ञान भी आत्मज्ञान नहीं है। आत्मज्ञान भिन्न है और शास्त्रज्ञान भिन्न है, विद्वत्ता अलग और ज्ञान अलग। ज्ञानी कभी विद्वान हो सकते हैं। परन्तु ऐसा नहीं है कि विद्वान हो वह सब ज्ञानी ही हो। ऐसा कभी नहीं मानना। ऐसा है। ज्ञानी विद्वान होने का संभव है और ज्ञान विद्वान ना भी हो। दोनों बात है। कोई ज्ञानी विद्वान भी हो और कोई ज्ञानी विद्वान ना भी हो। फिर भी उसको जो आत्मज्ञान है वह ज्ञान है। विद्वत्ता है उसको भी ज्ञान नहीं है। उसे

आत्मज्ञान है तो ज्ञान है। अतः विद्वत्ता अलग और ज्ञान अलग है। बाकी आत्मज्ञान रहित जो... उसके अनुरूप है इसलिये उसीमें से लिया है। एक ही प्रवचनमें से है। प्रवचनसार की १७२ गाथा का।

‘जिसे इन्द्रियज्ञानका रस चढ़ा है-उन्हें अतीन्द्रिय-ज्ञान नहीं होता।’ है, आया न? यहाँ क्षयोपशमज्ञान नहीं परन्तु इन्द्रियज्ञान शब्द है। माने क्या? कि जिसे अपनी बुद्धि का बहुत उधाड़ है, जिसकी बुद्धि विशाल है, जिसकी बुद्धि तीक्ष्ण है, सूक्ष्म है जिसे बुद्धिमान कह सकते हैं, बुद्धिमान कह सकते हैं, उस बुद्धिमान को अपनी बुद्धि की महत्ता आती है, उसे यहाँ इन्द्रियज्ञान का रस कहा है। वह अनात्मरस है, वह आत्मरस नहीं है। जैसे बाहर में पाँच इन्द्रिय विषयों का रस वह अनात्मरस है, जड़रस है, पुद्गल का रस है, क्षयोपशम का रस है। क्षयोपशम तो कर्म-प्रसंग है, कर्म का प्रकार है। वह कर्म के क्षयोपशम का रस हो गया। उसको जो रस चढ गया है, जिसके परिणामन में वह रंग और वह रस चढ़ा है उसे अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट नहीं होता। यह सिद्धान्त लिया। कब तक? कि जब तक वह रस उसे चालू रहे तब तक। ऐसा है।

अतः उसकी कीमत निकाल देनी चाहिये। जब तक अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट होकर आत्मज्ञान न हो तब तक उसने इन्द्रियज्ञान की विशेषता मानी हो उस पर चौकड़ी रख देनी चाहिये। ऐसा है।

(प्रवचन का शेष अंश अगले अंकमें...)

(पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन का शेष अंश...)

अशुद्धभाव / विकल्प उठता है; उससे मुक्ति नहीं होती, बन्ध है। पराश्रयभाव, व्यवहार, बन्ध है; स्वआश्रय उत्पन्न हुआ, वह अबन्धभाव है, एक ही बात। तीन काल-तीन लोक में सिद्धान्त सिद्ध (हुआ है) वह बदलेगा नहीं। समझ में आया? यह श्लोक आधार में दिया था। ८९ श्लोक का आधार था। अब ९० (गाथा)।

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी. १२-A



मुमुक्षु :- ... और बाकी के सभी गुण निर्विकल्प है, तो केवलज्ञान को भी सविकल्प कहते हैं? ..

समाधान :- ज्ञानगुण सविकल्प है। ज्ञान सबको जानता है। दूसरे गुण स्वयं को जानते नहीं, दूसरे गुण दूसरों को नहीं जानते। एक ज्ञानगुण ऐसा है कि सबको जानता है। ज्ञानगुण दूसरे अनन्त गुणों को जानता है। ज्ञान स्वयं को जानता है, ज्ञान दूसरे गुणों को जानता है, ज्ञान लोकालोक को जानता है। इसलिये ज्ञान को सविकल्प कहने में आता है। परन्तु राग का विकल्प है, उस प्रकार का वह विकल्प नहीं है। उसका तो सहज स्वभाव जानने का है, इसलिये उसे सविकल्प कहने में आता है। निर्विकल्प होनेपर भी उसे सविकल्प कहने में आता है। केवलज्ञान को भी सविकल्प कह सकते हैं, क्योंकि वह सब जानता है इसलिये। उसे जानने की अपेक्षासे कह सकते हैं। वस्तु स्वभाव से वह निर्विकल्प, उसमें कोई राग का विकल्प नहीं है, वह तो वीतराग है। एक के बाद एक विकल्प करके उसे जानना नहीं है। वह तो सहज निर्विकल्परूपसे जानता है। राग की अपेक्षासे तो वह वीतराग है, निर्विकल्प है। लेकिन जानने की अपेक्षासे उसे सविकल्प (कहते हैं)। सविकल्पपना वह अलग प्रकार का है। ये जो विकल्प होते रहते हैं वैसा वह विकल्प नहीं है, वह तो जानना जानना (होता है) उसे अपेक्षासे सविकल्प (कहते हैं)।

केवलज्ञान हो तो भी ज्ञानगुण अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, दूसरे अनन्त गुण अपने में है उसे जाने, ज्ञान दूसरे द्रव्य को जाने, ज्ञान दूसरे के गुणों को, दूसरे की पर्याय को, ज्ञान सब जानता है। इसलिये ज्ञान को सविकल्प कहने में आता है। लेकिन वह ज्ञान भिन्न रहकर जानता है, दूसरे में मिश्रित होकर नहीं जानता। दर्शनगुण, चारित्रगुण आदि सब गुण खुद स्वयं को नहीं जानते, परन्तु ज्ञान उसे जानता है।

मुमुक्षु :- उस अपेक्षासे निर्विकल्प कहते हैं?

समाधान :- हाँ, उस अपेक्षासे निर्विकल्प है। जानने की अपेक्षासे सविकल्प, वीतरागता की अपेक्षासे निर्विकल्प। दूसरे गुण जानते नहीं इसलिये वे निर्विकल्प, ज्ञान जानता है इसलिये सविकल्प।

मुमुक्षु :- माताजी! प्रवचनसार में आता है कि श्रमण को एकाग्रता होती ही है। श्रमण को एकाग्रता होती ही है और वह एकाग्रता जिसे पदार्थों का निर्णय है उसे ही होती है। और पदार्थों का निर्णय आगमज्ञानसे होता है। तो आगमज्ञान माने भगवान की वाणी अनुसार रचे गये सत्शास्त्र का अभ्यास करता है, फिर भी विश्वास, जो पदार्थों का निर्णय होना चाहिये वह कुछ एक को होता है, कुछ एक को नहीं होता है, तो विश्वास क्यों नहीं आता? पदार्थ का स्वरूप यथार्थ नहीं जाने तबतक तो विश्वास आने की बात नहीं रहती। परन्तु यथार्थ स्वरूप जानने के बाद भी विश्वास आने में देर लगती है और किसीको शीघ्र होता है, किसीको समय लगता है, किसीको नहीं होता, लंबे काल तक अभ्यास करता रहे फिर भी विश्वास नहीं होता, तो उसका क्या कारण है?

समाधान :- उसका कारण स्वयं दृढ़ता नहीं करता है इसलिये। अधिक जाने तो विश्वास आये ऐसा कुछ नहीं है। विश्वास करना स्वयं के हाथ में है। ज्ञानने जाना, शास्त्र-आगम में क्या कहा है, भगवानने क्या कहा है, आचार्योंने क्या कहा है, वह सब द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप स्वयं विचारसे जाने लेकिन उसे निर्णय करके

विश्वास लाना अपने हाथ की बात है, वह आगम नहीं कर देता। करना तो खुद को है। स्वयं के पुरुषार्थसे विचार करके उसका निर्णय, उसकी युक्ति और उसकी दृढ़ता-सभी पहलूसे स्वयं को निर्णय करना (है)। किसीको शीघ्र निर्णय होता है, किसी को देर लगती है, उस सब में स्वयं के पुरुषार्थ का कारण है। निमित्त कुछ करता नहीं। बहुत अभ्यास करे, परन्तु निर्णय करना स्वयं के हाथ की बात है कि वस्तु का स्वरूप ऐसा ही है ऐसा निर्णय करे। लेकिन अन्दरसे स्वयं के स्वभाव को पहचानकर जो निर्णय करना है, वह निर्णय स्वयं के पुरुषार्थ बिना हो नहीं सकता। पुरुषार्थ हो तो ही होता है।

मुमुक्षु :- माताजी! लौकिक में तो इस दवाईसे यह अच्छा होगा, फलानेसे ऐसा होगा, तो तुरन्त विश्वास हो जाता है। यहाँ भी स्वरूप तो जैसा है वैसा प्रत्येक अपेक्षासे जिसप्रकार विचारना चाहिये उसप्रकारसे नक्की करता है। फिर भी विश्वास जो निरंतर टिका रहना चाहिये, होना चाहिये और टिका रहना चाहिये वह यहाँ नहीं होता, उसका क्या कारण होगा? उसके साथ दूसरे कोई गुणों के परिणमन का सम्बन्ध होगा? जैसे कि रुचि हो वहाँ अधिक विश्वास कर सके ऐसा होगा? आपने पुरुषार्थ कहा, परन्तु वह पुरुषार्थ किसप्रकार का?

समाधान :- खुद को अन्तरसे दिखता नहीं है, विचार करता है, शास्त्र का अभ्यास करता है, युक्तिसे सब नक्की करता है, लेकिन वह स्वयं विश्वास लाता नहीं। उसके साथ परस्पर एकदूसरे का सब मेल है। रुचि कम है, लगनी कम है। वह खुद अन्दरसे निःशंकता, विश्वास लाता नहीं वह स्वयं के पुरुषार्थ का कारण है। उतनी रुचि भी कम है। परस्पर एकदूसरेसे सब का मेल है। परन्तु उन सब का मेल कब हो? स्वयं पुरुषार्थ करे तो सब मेल हो जाता है। उतनी लगन लगाये तो और स्वयं पुरुषार्थ करे तो विश्वास आये बिना रहता ही नहीं। उतनी लगन लगनी चाहिये कि मुझे निर्णय करना ही है। मुझे भव का अभाव करना है, भव का अभाव कैसे हो? वह मार्ग मुझे प्राप्त करना है और आत्मा के सुख की प्राप्ति मुझे करनी ही है, ऐसी यदि लगन लगे, अन्दरसे लगे तो वह विश्वास भी ला सकता है और पुरुषार्थ भी कर सकता है। लेकिन उतनी लगन नहीं लगी है, भवभ्रमणसे थकान नहीं लगी, वह सब अन्तरसे बराबर लगे कि मुझे करके ही रहना है तो वह किये बिना नहीं रहता। परन्तु थोड़ी देर करे और फिर छोड़ देता है। जो अनादिसे शंकाशील है वैसा हो जाता है। लेकिन यदि उसे अन्दरसे लगी हो तो वह निर्णय किये बिना रहता नहीं। गुरु कहते हैं, आगम कहते हैं लेकिन निर्णय करना अपने हाथ की बात है।

मुमुक्षु :- अपने परलक्ष्यी ज्ञान में भी जानने में आता है कि इसप्रकार भिन्न-भिन्न है और उसमें रुचि का विषय ज्ञायक आत्मा ही हो सकता है, अन्य कुछ नहीं। फिर भी उस रुचि में मैं ज्ञायक ही हूँ, मैं ज्ञायक ही हूँ वह नहीं टिकता।

समाधान :- अनादि के अभ्यास में दौड़ता है। लेकिन उसे बारंबार पुरुषार्थ करना चाहिये। बारंबार उसके पीछे लगना चाहिये, तो होता है। बाहर का कुछ होता है तो उसके पीछे लगता है कि मुझे यह अभ्यास करना है, इतनी पढ़ाई करनी है, तो उसके पीछे लगता है। वह तो पुण्याधीन है। उसे बाह्यसे दवाई काम आये, पैसे मिलने सब पुण्याधीन है, फिर भी उसमें पुरुषार्थ करता रहता है। और यहाँ उसे अन्दर इतना दुःख नहीं लगा है, भव की थकान नहीं लगी, उतनी रुचि नहीं है, इसलिये थोड़ा-थोड़ा करके छोड़ देता है। पुनः शंकाशील हो जाता है।

मुमुक्षु :- .. स्वभाव ख्याल में आनेपर भी उपयोग वहाँ टिकता नहीं, प्रतिकूलता में पुनः दौड़ जाता है।

समाधान :- स्वयं को अन्दर उतनी लगी हो तो बार-बार पलटता रहे। अनादि का अभ्यास है इसलिये उपयोग दौड़ जाता है। तो उसे बारंबार पलटता रहे। बारंबार ये आत्मा कहाँ चला जाता है? मुझे तो आत्मा का करना है, ये सब सुखरूप नहीं है, सुख तो मेरे आत्मा में है, मैं तो ज्ञायक हूँ, (ऐसे) बारंबार उसे पलटता

रहे, बारंबार पुरुषार्थ करता रहे। थक जाये, मन्द पड़ जाये तो बारंबार करता रहे। उसके पीछे लग जाये तो हुए बिना रहता नहीं।

एक काम सीखना हो तो उसके पीछे लगना पड़ता है, वैसे इसे समझने के लिये बारंबार उसके पीछे लगे। फिर उसमें चाहे जितना समय लगे तो भी आकुलता नहीं करता। उसके पीछे लगा ही रहता है और इसीतरह पुरुषार्थ चालू ही रखता है।

मुमुक्षु :- किसी जीव को तुरन्त श्रद्धा हो जाती है, विश्वास हो जाता है, किसीको हज़ारों साल हो जाये तो भी विश्वास आता नहीं। धारणाज्ञानसे सब बोले, कहे, समझाये परन्तु अन्दर में जो स्वयं को विश्वास आना चाहिये कि यह ज्ञायक है वही मैं हूँ, मैं यह भिन्न ज्ञायक हूँ, ऐसा विश्वास जो आना चाहिये (वह नहीं आता)। वैसे देखे तो परद्रव्यों का राग एक समय की पर्याय को गिने। इन चारों का विभाजन करे तो ये चार वस्तुएँ हैं। उसमें रुचि का विषय, रुचि की अपेक्षासे लें तो रुचि का विषय सिवा ज्ञायक अन्य कुछ हो नहीं सकता। इन सब का भाव में स्वीकार आता है, फिर भी क्यों टिकता नहीं है कि मैं ज्ञायक ही हूँ? इसमें तो रुचि की अपेक्षासे उसे टिका रहना है।

समाधान :- पलट जाता है। निर्णय की ऐसी दृढ़ता करे, ज्ञायक को ग्रहण करे, रुचि की तीव्रतासे ज्ञायक को ग्रहण करे और श्रद्धा करे, बराबर पुरुषार्थ करके टिका रहे, उसमें एकाग्र हो तो भी वह पुरुषार्थसे होता है। उसकी लगनी लगे। पुरुषार्थ कब होता है? उसकी लगन लगे तब, उसकी रुचि हो तो होता है। उसकी खटक होनी चाहिये, तो होता है।

मुमुक्षु :- अभी जो लगनी लगती है वह वास्तविकरूपसे पूरी लगनी नहीं है।

समाधान :- पूरी नहीं है, लगनी लगी है वह छूट जाती है। मूल तक पहुँचता नहीं। थोड़ी लगनी लगती है इसलिये नक्की करता है, पुनः वह छूट जाता है। पूरा पलटना, उसकी पूरी दिशा बदलनी कठिन पड़ता है। दृष्टि की पूरी दिशा पलटनी उसे कठिन पड़ता है। अनादिसे दृष्टि बाहर चली जाती है। उस दृष्टि को ज्ञायक पर श्रद्धा में लानी, ज्ञायक पर ही उसे स्थिर करना, ऐसी दिशा पलटनी उसे कठिन पड़ती है। दिशा उसकी पलटती नहीं है। उसमें उसकी प्रथम भूमिका कठिन होती है। समझ पीछे सब सरल है, ऐसा आता है। पहले एकदम कठिन लगता है, फिर तो मार्ग स्वयं सहज और सरल है। स्वयं ही है, इसलिये सुगम है। परन्तु प्रथम भूमिका में उसे पलटना बहुत दुष्कर हो जाता है।

पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रवचन अब You tube पर

परम उपकारी पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रकाशित पुस्तकों के प्रवचन गुजराती एवं हिन्दी भाषा के Subtitle साथ अब देखिये। You tube में Satshrut prabhavna channel पर जाकर यह प्रवचन सुन सकते हो। यह प्रवचन पूर्ण होने के बाद राज-हृदय, कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी के ग्रन्थ पर हुए प्रवचनों का प्रारम्भ किया जायेगा। हर रविवार सुबह ११ बजे इन प्रवचनों का जीवंत प्रसारण होता है, जिसका सर्व मुमुक्षुओं को लाभ लेने की विनती। Channel को Subscribe करने से आगामी प्रसारित प्रवचन का Notification स्वयं ही प्राप्त हो जायेगा।

‘स्वानुभूतिप्रकाश’ (हिन्दी) के स्वामित्वका विवरण फॉर्म नं.४, नियम नं. ८

पत्रका नाम : ‘स्वानुभूतिप्रकाश’ (हिन्दी)
 प्रकाशन स्थल : श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१
 प्रकाशन अवधि : मासिक
 मुद्रक : भगवती ऑफसेट, १५/सी बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८०००४
 प्रकाशकका नाम : श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१
 संपादकका नाम : राजेन्द्र जैन, (भारतीय), ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१
 स्वामित्व : श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर-३६४००१
 मैं, राजेन्द्र जैन, एतद द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी और विश्वास अनुसार उपरोक्त विवरण सत्य है।

ता. ३१ मार्च, २०२२

राजेन्द्र जैन

मेनेजिंग ट्रस्टी, श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

धार्मिक कार्यक्रम

सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई के वार्षिक समाधिदिन पर तीन दिवसीय धार्मिक कार्यक्रम निम्नोक्त स्थान पर आयोजित किया गया है। चैत सुदी ३, सोमवार दि.४-४-२०२२ से चैत्र सुदी ५, बुधवार दि.६-४-२०२२ पर्यंत जिनमंदिर में मंडलविधान रखा गया है। एवं ‘शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर’ में प्रातः ७.०० से ८.०० पूज्य भाईश्री शशीभाई का सीडी प्रवचन, दोपहर ४.०० से ५.०० गुणानुवाद, रात ८.०० से ९.०० पूज्य भाईश्री शशीभाई का वीडियो प्रवचन एवं भक्ति रखी गई है। दि.६-४-२०२२, चैत्र सुदी ५ के दिन सुबह ४.०० बजे ‘शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर’ में भक्ति एवं दो मिनट का मौन रखा जायेगा। तत्पश्चात ७.०० से ८.०० प्रवचन और बाद में पूज्य भाईश्री के समाधि स्थल पर भक्ति रखी गई है। इस प्रसंग पर आनेवाले मुमुक्षुओं के लिए आवास एवं भोजन व्यवस्था निःशुल्क रखी गई है। आनेवाले मुमुक्षु भाई-बहनों से विनम्र सूचन है की वे अपने आने कि सूचना पहले से दे, ताकि उनके आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था हो सके।

संपर्क :- श्री राजेन्द्र जैन, मो. ९८२५१५५०६६

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (मार्च-२०२२) का शुल्क श्रीमती वंदनाबहन रणधीरभाई घोषाल, कोलकाटा के नाम से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

२९२

ववाणिया, आसोज वदी १२, १९४७

कुटुम्बादिक संगके विषयमें लिखा सो ठीक है, उसमें भी इस कालमें ऐसे संगमें जीवका समभावमें परिणमन होना महा विकट है, और जो इतना होते हुए भी समभावमें परिणमित होते हैं उन्हें हम निकटभवी जीव मानते हैं।

आजीविकाके प्रपंचके विषयमें वारंवार स्मृति न हो इसलिये नौकरी करनी पड़े, यह हितकारक है। जीवको अपनी इच्छासे किये हुए दोषको तीव्रतासे भोगना पड़ता है, इसलिये चाहे जिस संग-प्रसंगमें भी स्वेच्छासे अशुभभावसे प्रवृत्ति न करनी पड़े ऐसा करे।

२९३

ववाणिया, आसोज वदी १३, शुक्र, १९४७

श्री सुभाग्य, स्वमूर्तिरूप श्री सुभाग्य,

हमें विरहकी वेदना अधिक रहती है, क्योंकि वीतरागता विशेष है; अन्य संगमें बहुत उदासीनता है, परंतु हरीच्छाके अनुसार प्रसंगोपात्त विरहमें रहना पड़ता है; जिस इच्छाको सुखदायक माननेमें हमारा विचार नहीं रहता। श्री हरिकी अपेक्षा इस विषयमें हम अधिक स्वतंत्र है।

२९४

बंबई, १९४७

आर्त्तध्यान करनेकी अपेक्षा धर्मध्यानमें वृत्तिको लाना ही श्रेयस्कर है। और जिसके लिये आर्त्तध्यान करना पड़ता हो वहाँसे या तो मनको उठा लेना अथवा तो उस कृत्यको कर लेना जिससे विरक्त हुआ जा सकेगा। जीवके लिये स्वच्छंद बहुत बड़ा दोष है। यह जिसका दूर हो गया है उसे मार्गिके क्रमकी प्राप्ति बहुत सुलभ हैं।

२९५

बंबई, १९४७

यदि चित्तकी स्थिरता हुई हो तो ऐसे समयमें सत्पुरुषोंके गुणोंका चिंतन, उनके वचनोंका मनन, उसके चारित्रका कथन, कीर्तन, और प्रत्येक चेष्टाका पुनः पुनः निदिध्यासन हो सकता हो तो मनका निग्रह अवश्य हो सकता है; और मनको जीतनेकी एकदम सच्ची कसौटी यह है। ऐसा होनेसे ध्यान कया है यह समझमें आयेगा। परंतु उदासीनभावसे चित्तस्थिरताके समय उसकी विशेषता मालूम पड़ेगी।

